☆ हिन्दी की दुर्दशा

राष्ट्रभाषा से राजभाषा, और फिर वनवास

दया प्रकाश सिन्हा
आई.ए.एस. (से.नि.)

संविधान सभा ने भारतीय संविधान में हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिया। सन् 1950 से हिन्दी इस देश में राजभाषा के रूप में सिंहासनासीन है। आज़ादी के पूर्व हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वमान्य थी। दक्षिण के तमिल, तेलुगु, मलयालम एवं कन्नड़ भाषी लोगों को भी राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वीकार थी। किन्तु संविधान द्वारा राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के बाद, हिन्दी का लगातार अवमूल्यन हुआ। ऐसा क्यों हुआ ? इसके अन्वेषण की आवश्यकता है।

अंग्रेजों के पूर्व मुगलों की राजभाषा फ़ारसी थी, उर्दू नहीं। नीचे तबके के अहल्कारों में, अधिकांशतः हिन्दुओं से परावर्तित मुसलमान थे, या थोड़े बहुत हिन्दू थे जो फ़ारसी नहीं जानते थे। उच्च स्तरीय पदों पर फ़ारसी जानने वाले विदेशियों (अरबी, इरानी और तुर्क) की ज्यादातर नियुक्ति की जाती थी, जो बराबर अपनी किस्मत आजमानें, नौकरी की तलाश में हिन्दुस्तान आते रहते थे। फारसी न जानने वाले हिन्दू तथा हिन्दुओं से परावर्तित मुसलमान इन फ़ारसीदॉ विदेशियों के सामनें अपनें को हीन समझते थे। अतएव वह दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली हिन्दी (खड़ी बोली या कौरवी) को फ़ारसी लिपि में लिख कर ही अपनी हीनता की भावना से मुक्ति पाने का प्रयत्न करने लगे। इस तरह उदय हुई ''उर्दू'', जो हिन्दी भाषा और फ़ारसी भाषा का घोलमेल है। कालान्तर में, कई राजानैतिक कारणों से, हिन्दी से अलग, उर्दू को एक भाषा का दर्ज़ा दिया जाने लगा।

मुगलों को हटाकर जब अंग्रेजों नें भारत की बागडोर संभाली, तो शासन के उच्च स्तरों पर फ़ारसी के स्थान पर अंग्रेजी लागू की, तथा निचले स्तर पर उर्दू। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रजों ने स्वयं अनुभव किया कि उत्तरी भारत के हिन्दुओं की भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी है न कि फ़ारसी लिपी में हिन्दी, जो उर्दू कही जाती है। अतएव मध्य प्रदेश (तत्कालीन ''सेन्ट्रल प्रोविसेंज'') में 1872 तथा बिहार में सन् 1881 में हिन्दी को उर्दू के स्थान पर निचले प्रशासन की भाषा घोषित किया गया। उत्तर प्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रांत) के गवर्नर एंटनी मैक्डॉनेल नें उर्दू को हटाकर हिन्दी लागू करनें का निर्णय किया, तो सर सैयद अहमद खां आड़े आ गयें। सर सैयद अहमद खां का अंग्रेज सरकार पर बड़ा प्रभाव था। अंग्रेज़ उनकों भारत में बढ़ती राष्ट्रीयता की भावना पर रोक लगाने के लिए इस्तेमाल कर रहे थे। वह और उनके द्वारा स्थापित अलीगढ़ विश्वविद्यालय, पूरी तरह मुस्लिम अलगाव को संपुष्ट करते हुऐ, हिन्दू और मुसलमानों को दो अलग राष्ट्रों के द्विराष्ट्रीय सिद्धांत का प्रतिपादन कर रहे थे। हिन्दू और मुसलमानों को एक राष्ट्र मानने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की तीखी आलोचना करते हुए सन् 1888 में लखनऊ में सर सैयद नें कहा था –

''मेरी समझ में यह नहीं आता कि क़ौमी कांग्रेस है क्या? क्या यह समझा जाये कि अलग अलग कौमों के लोग जो हिन्दुस्तान में रह रहें हैं, वे एक कौम के लोग हैं ,या एक क़ौम बन सकतें हैं, और उनकें नाम और उनकी ख्वाहिशें एक जैसी हो सकती हैं। जो कांग्रेस हिन्दुस्तान को एक कौम समझती है, वह चाहे किसी भी सूरत में आएं, मैं वैसी कांग्रेस के खिलाफ हूं।''

अंग्रेजों के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा में सर सैयद का इतना योगदान था कि कृतज्ञ ब्रिटिश सरकार ने इलाहाबाद में उनके रहनें के लिए बहुत आलीशान बंगला तक बनवाया था। इससे सर सैयद के अंग्रेजी हुकूमत पर प्रभाव का अंदाजा लगाया जा सकता है। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति के सामनें गवर्नर मैक्डॉनेल की कुछ ना चली। जब वह हिन्दी को निचले प्रशासन की भाषा नही बना सका, तो उसनें संयुक्त प्रांत में अप्रैल 1900 के ''हिन्दी प्रस्ताव'' के द्वारा सरकारी नौकरी के लिए देवनागरी लिपि को फ़ारसी लिपि के समकक्ष मानते हुए यह आदेश दिया कि सरकारी नौकरी के लिए फ़ारसी और नागरी लिपि दोनों को जानना आवश्यक होगा।

इस आदेश का ''अलीगढ़ स्कूल'' और अलगाववादियों ने खुलकर विरोध किया। उन्होनें एलान किया कि ''हिन्दी प्रस्ताव'' के द्वारा सरकार अज़ीम (ऊंची) उर्दू ज़बान को निचली ज़बान ''हिन्दी गन्दी'' के बराबर रख कर ज़्यादती कर रही है।

मुसलमान नेताओं ने ऐलान किया कि ''हिन्दी प्रस्ताव'' से मुसलमानों की आर्थिक स्थिति विषम रूप से प्रभावित होगी। उनका तर्क़ था मुसलमाान गरीब हैं। उनमें अंग्रेजी भाषा के प्रचार का अभाव है। इसलिए पहले से ही सरकारी नौकरी में हिन्दू छाए हुए हैं। ''हिन्दी प्रस्ताव'' के बाद हिन्दू और भी सरकारी नौकरी में भर जाऐंगे। गरीब मुसलमानों को सरकारी नौकरी का ही सहारा है। वे उससे भी जाएंगे। इसके उत्तर में गवर्नर नें मुस्लिम प्रतिनिधि मण्डल को बताया कि संयुक्त प्रांत की कुल जनसंख्या में मुसलमान 14 प्रतिशत हैं, किन्तु सरकारी नौकरी में उनकी भागीदारी 37.5 प्रतिशत है। ''हिन्दी प्रस्ताव'' से मुसलमानों के हित को क्षति नही होगी। किन्तु अलीगढ़ स्कूल ने अपना विरोध जारी रखते हुए एक हिन्दी विरोधी आन्दोलन चलाया।

अलीगढ़ कालेज के सेक्रेटरी मोहसिन–उल–मलिक ने ''उर्दू डिफेंस एसोसिएशन'' की स्थापना की। मुस्लिम नेताओं ने उत्तर प्रदेश के नगरों और कस्बों का दौरा करके हिन्दी के विरूद्ध जन–उन्माद उभारने की कोशिश की। ढाका और लाहौर में ''इस्लाम ख़तरे में है'' के नारे सुनाई पड़े। अगस्त 1900 में लखनऊ के मुल्लाओं, ज़मीदारों, मुदर्रिसों, वकीलों और अख़बार–नवीसों के चार सौ प्रतिनिधियों ने एकत्रित होकर मुसलमानों को अपनें ''मज़हब और तहज़ीब'' की हिफाज़त के लिए उठ खड़े होने का पैग़ाम दिया। इसका असर हुआ। वाइसराय मेक्डॉनेल का स्थानान्तरण हो चुका था। उसकी जगह लाटूशे गवर्नर पद पर था। उसने वाइसराय लार्ड कर्ज़न को लिखा कि 'हिन्दी को एक भाषा माननें में मेक्डॉनेल ने कुछ ज़्यादा ही जल्दी कर दी।' नतीजा यह हुआ कि हिन्दी और उर्दू को समकक्ष मानने का आदेश केवल काग़जों पर ही रहा। वह कभी क्रियान्वित नही किया गया। फ़ारसी लिपी में लिखी उर्दू ही निचले प्रशासन की भाषा सन् 1947 तक बनी रही। इसके बाद तो उर्दू मुस्लिम अलगाववाद का हथियार बन गई।

मुस्लिम लीग और जिन्ना ने घोषित किया कि उर्दू मुसलमानों की जुबान है। जब उर्दू को मज़हबी चोला पहनाया जा रहा था तो नगरों में बसे हिन्दू परिवार जो पीढ़ियों से उर्दू पढ़ते आ रहे थे, उन्होने भी उर्दू छोड़ हिन्दी अपना ली। इस तरह मुस्लिम लीग के साम्प्रदायिक प्रचार नें उर्दू और हिन्दी के बीच धार्मिक विभेद की रेखा खींच दी।

लोकमान्य तिलक हिन्दी के पक्षधर थे। महात्मा गांधी भी हिन्दी के पक्षधर थे। उन्होने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचाार सभा स्थापित की थी। वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी जुड़े थे। किन्तु राजनैतिक कारणों से गांधी जी ने पाला बदला। मुसलमानों की तुष्टि हेतु उन्होने हिन्दी की पक्षधरता को छोड़ कर ''हिन्दुस्तानी का प्रचार'' किया। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' का नाम भी बदल कर 'दक्षिण भारत

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का भी उन्होने नाम बदलना चाहा, किन्तु पुरूषोत्तम दास टण्डन इसके लिए सहमत नही हुए। अतः गांधी जी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन से त्यागपत्र देना पड़ा।

गांधी जी ने हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी को प्रचारित करने का अतिशय प्रयत्न किया, किन्तु वह सफल नही हुए। हिन्दी भाषी क्षेत्र के 85 प्रतिशत लोगों की भावना का रेला, कूटनीतिज्ञ लाभ से प्रेरित, हिन्दुस्तानी के निर्जीव पुतले को एक झटके में बहा ले गया। इसीलिए आज कहीं हिन्दुस्तानी का नामोनिशान तक नहीं बचा हैं।

यद्यपि कांग्रेस ने हिन्दी के विरूद्ध हिन्दुस्तानी को और मुस्लिम लीग ने हिन्दी के विरूद्ध उर्दू को खड़ा करके भाषा के प्रश्न का राजनीतिकरण करके हिन्दी के प्रवाह को अवरूद्ध करने का प्रयत्न किया, किन्तु सामान्यजन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बिना किसी सरकारी या राजनैतिक संरक्षण के सामान्यजन ने स्वयं अपनी सांस्कृतिक पहचान के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित किया। आज़ादी के पूर्व हिन्दी को राजभाषा का आसन प्राप्त नहीं था, किन्तु राष्ट्र भाषा के रूप में वह जन जन के हृदय पर शासन करती थी।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे या तीसरे दशक में उत्तर प्रदेश के किसी भी सरकारी स्कूल की चौथी–पांचवी कक्षा में अगर तीस विद्यार्थी होते थे, तो उनमें से केवल तीन–चार विद्यार्थी हिन्दी पढ़ने वाले होते थे, शेष सब उर्दू वाले। किन्तु चौथे दशक तक स्थिति इसके विपरीत हो गई। तीस विद्यार्थियों की कक्षा में केवल तीन चार विद्यार्थी उर्दू पढ़ने वाले होते थे, शेष सब हिन्दी वाले। यह आमूल परिवर्तन सरकारी संरक्षण या आदेश से नही हुआ। यह अंतर हिन्दी भाषियों की स्वतः स्फूर्त चेतना तथा विदेशी शासकों द्वारा लादी गई भाषा के विरूद्ध विद्रोह करके, अपने आत्म–सम्मान और सांस्कृतिक पहचान को पुनर्जीवित करनें के सदाग्रह का परिणाम था ।

हिन्दी के राष्ट्र में स्थान को स्वीकार करते हुऐ अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी, हिन्दी के महत्व को पहचाना था। गुजराती महर्षि दयानन्द सरस्वती, बंगाली सुभाष चन्द्र बोस और रवींद्र नाथ टैगोर, मराठी लोकमान्य तिलक तथा तमिल राजगोपालाचारी का स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान सपना था–एक देश, एक राष्ट्र, एक भाषा का। इस सपने को साकार करने जहां अनेक देशभक्त जेल गए, फांसी के फंदे पर झूले, वहीं अनेक देशभक्तों ने हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में अध्ययन और प्रचार किया। इसमें अनेक दक्षिण भारतीयों का योगदान ऐतिहासिक महत्व का है।

आज़ादी के पूर्व हिन्दी को सरकारी संरक्षण प्राप्त नहीं था, न सामाजिक प्रतिष्ठा, फिर भी जन जन की स्वीकृति से भूषित हिन्दी हर दृष्टि से राष्ट्रभाषा थी। किन्तु आजादी के पश्चात यद्यपि हिन्दी संविधान सभा द्वारा राजभाषा के रूप में स्वीकार की गई, परन्तु वह न राजभाषा बन सकी और न राष्ट्रभाषा रही। ऐसा कैसे हुआ ?

आजादी के बाद राजभाषा हिन्दी

संविधान सभा में राजभाषा पर बहुत बहस हुई। अधिकांश मुसलमान आज़ादी के पूर्व मुस्लिम लीग के साथ थे, और उर्दू की खुली वकालत करते थे। उन्ही मुसलमानों ने जब देखा कि अब उर्दू की राजभाषा

के रूप में वकालत करने पर वह अलग–थलग पड़ जायेंगे, तो उन्होने हिन्दी के रास्ते में रोड़ा डालने के लिए हिन्दुस्तानी का पल्ला पकड़ा। अनेक गांधीवादी पहले से ही हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे। अतएव संविधान सभा को राजभाषा के लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानी मे से किसी एक को चुनना था। संविधान सभा ने भारी बहुमत से हिन्दी को चुना, क्योंकि हिन्दीभाषी, विशेष कर दक्षिण प्रदेशों से आए सदस्य हिन्दी के समर्थक थे। 14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा में हिन्दी राजभाषा के रूप में स्वीकार की गई। इसीलिए तब से आजतक 14 सितंबर प्रत्येक वर्ष हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

नेहरू जी का दायित्व

कागज पर हिन्दी राजभाषा बन गई। उसे कार्यरूप देने का दायित्व नेहरू जी और उनकी सरकार का था। किन्तु नेहरू जी ने इस दायित्व का निर्वहन नही किया। अपने सत्रह वर्षों के प्रधानमंत्री–कार्यकाल में नेहरू जी ने ऐसा कुछ नहीं किया जिससे हिन्दी राजभाषा के रूप में सुदृढ़ होती।

नेहरू जी का अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजियत के प्रति मोह उनकी चरित्रगत क़मजोरी थी। 15 जून 1910 को 21 वर्ष की आयु में जवाहर लाल नेहरू नें अपनें पिता मोतीलाल नेहरू को पत्र में लिखा कि वह कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय छोड़कर ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय इसलिए जाना चाहतें *'क्योंकि कैम्ब्रिज अब हिन्दुस्तानियों से भर गया है।' (स्टैनली वोलपोर्ट : नेहरू, ओ.यू.पी., पृष्ठ–25)* इसके दो अर्थ नहीं हो सकते। इसका केवल एक ही अर्थ है। नेहरू जी अंग्रेंजो के प्रति हीनता की भावना से इतने ग्रस्त थे कि स्वयं अंग्रेज बन जाना चाहते थे। इसीलिए उनको हिन्दुस्तानियों का साथ अच्छा नहीं लगता था। वे उनसे और अपने हिन्दुस्तानी मूल से दूर भागना चाहते थे। नेहरू जी की इस गुलाम मानसिकता ने उनका साथ जीवन के अन्त तक नही छोड़ा। 75 वर्ष की आयु में उन्होंने अमरीकी राजदूत गैलब्रेथ से कहा :– *''मैं इस देश में शासन करनें वाला आखिरी अंग्रेज हूं।''*

विश्वास नहीं होता कि स्वतंत्र भारत का प्रधानमंत्री अपने आपको ''अंग्रेज'' कहनें में कैसे गर्वित महसूस कर सकता है ? यह सामान्य हिन्दुस्तानी के लिए डूब मरने की बात हैं। आत्म–सम्मान और राष्ट्रगौरवहीन व्यक्ति ही ऐसी बातें कह सकता है। किन्तु नेहरू जी की मानसिकता के अध्ययन के पश्चात इसमें किसी को भी आश्चर्य नही होगा। उन्होंने अपनी मानसिकता के अनूरूप ही, आजादी के बाद भी, अंग्रेजी के वर्चस्व को बनाये रखा।

जब देश आज़ाद हुआ, तो सबको लगा कि भारत में अब अंग्रेजी का भविष्य नहीं है। अतएव सभी ईसाई मिशन भारत में अपनें स्कूल बंद करने की योजना बनानें लगे। तभी पंडित नेहरू नें विदेशों में राजदूत पद के लिए ढूंढ ढूढ कर अंग्रेज किस्म के हिन्दुस्तानियों को चुना। स्वयं नेहरू जी के शब्दों में, ऐसे आदमियों को विदेश भेजना चाहिए *'' जो अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं, और पश्चिमी तौर–तरीक़ों को जानते हैं।'' (दुर्गादास : ''इंडिया फ्रोम कर्ज़न टु नेहरू एंड आफ्टर,'' कॉलिंस, पृष्ठ 291)* । इससे पूरे देश को यह संदेश मिल गया कि आज़ाद हिन्दुस्तान में भी अंग्रेजी का उतना ही महत्व है जितना गुलाम हिन्दुस्तान में था। जाते हुए मिशनरी स्कूल रुक गये। उनमें हिन्दुस्तानी बच्चों की संख्या कालान्तर में दुगुनी, तिगुनी और चौगुनी हो गई। और बेचारी हिन्दी, राजभाषा बनकर भी, राजभाषा के सम्मान से वंचित रही।

नेहरू जी का उर्दू प्रेम

अंग्रेजी के पश्चात दूसरी भाषा जो नेहरू जी को प्रिय थी, वह उर्दू थी। हिन्दी के स्थान पर अगर उर्दू देश की संपर्क भाषा बनती तो नेहरू जी को बहुत खुशी होती। किन्तु यह संभव नही था। जिन्ना और मुस्लिम लीग ने उर्दू को मुसलमानों की भाषा घोषित किया था और पाकिस्तान बनने के बाद वह पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा घोषित कर दी गई। अतएव उर्दू के प्रति पूरे देश में विषम प्रतिक्रिया थी। इसलिए नेहरू जी समेत सभी उर्दूभक्त संविधान सभा में हिंदुस्तानी के समर्थक बन गए। उन्हे हिंदुस्तानी के चोर दरवाजे से उर्दू लाने की उम्मीद थी। वह हिंदुस्तानी की आड़ में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा नहीं देना चाहते थे । किन्तु संविधान सभा में हिंदुस्तानी समर्थको को मुह की खानी पड़ी। नेहरू जी चुप रहे। किन्तु ह्रदय से हिन्दी को उन्होने कभी स्वीकार नहीं किया। इस संबंध में की एक घटना उल्लेखनीय है जो पत्रकार दुर्गादास ने अपनी पुस्तक *''इंडिया फ्रोम कर्ज़न टु नेहरू एंड आफ्टर''* में पृष्ठ 329–330 पर दी है।

हिन्दी के राजभाषा घोषित किए जाने पर यह व्यवस्था थी कि हर 5 वर्ष पर एक संवैधानिक समिति हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के सभी प्रयत्नो, व्यवस्थाओं और योजनाओं का निरीक्षण करेगी तथा उसकी रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जाएगी। संसदीय समिति उस पर विचार करके अपनी संतुति देगी। ये संतुति अंत में मंत्रिमंडल के सम्मुख कार्यान्वयन के लिए भेजी जाएगी। उस समय गोविंद वल्लभ पंत गृहमंत्री थे । राजभाषा का कार्य उस समय गृहमंत्रालय के अंतर्गत ही था। अतः गोविंद वल्लभ पंत के ऊपर संवैधानिक समिति और संसदीय समिति की संतुतियों को मंत्रिमंडल मे प्रस्तुत करने का दायित्व आया।

हिन्दी का मामला जब मंत्रिमंडल में आया, तो प्रधानमंत्री नेहरू को उर्दू की याद आ गई। वह कहने लगे कि दिल्ली के ज्यादा लोग उर्दू बोलते हैं, इसलिए उर्दू को दिल्ली की ज़बान मानना चाहिए। पंत जी ने असहमति व्यक्त करते हुये कहा कि दिल्ली के छह प्रतिशत लोगों की मातृभाषा उर्दू है। इस पर नेहरू जी बिगड़ गए और उन्होने कहा की आंकड़े झूठे हैं। उन्होने यह भी कहा कि राष्ट्रपति की ओर से आदेश जारी होना चाहिए जिससे सरकारी काम का विभाजन करके यह तय किया जाए कि कौन काम हिन्दी मे होगा, और कौन उर्दू में। इससे भी असहमति व्यक्त करते हुये पंत जी ने कहा कि अगर ऐसा किया गया तो यह समाज को उसी तरह सांप्रदायिक आधार पर विभाजन करेगा, जिस प्रकार सांप्रदायिक निर्वाचन मण्डल ने हिन्दू–मुसलमानो मे विभेद किया, जिसकी परिणिति देश के विभाजन मे हुई। नेहरू जी और चिढ़ गए। उन्होने क्रोध से चीखते हुये कहा, *''यह क्या बकवास है। हिन्दी मे वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द भी नहीं है*।'' और नेहरू जी ने आवेश में पत्रावली फेंक दी। संसद कि संतुतियों का हिन्दी मे वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली से कोई संबंध नहीं था। किन्तु नेहरू जी को हिन्दी के प्रति अपनी नफरत प्रकट करनी थी, इसलिए इसका उल्लेख किया। यहाँ उल्लेखनीय है कि नेहरू जी के व्यवहार से गोविंद वल्लभ पंत को इतनी चोट लगी कि उनको दो चार दिन बाद ही दिल का दौरा पड़ गया। वह उससे उबर नहीं सके और अंततः उनकी मृत्यु हो गई। (*दुर्गादास : इंडिया फ्रोम कर्जन टू नेहरू एंड आफ्टर'', पृष्ठ 330–331)।* एक तरह से कहा जाये तो पंत जी की मृत्यु नेहरू जी की हिन्दी के प्रति नफरत का परिणाम थी।

देश में नेहरू जी के भक्तों की कमी नहीं है। उनसे यह कडुआ सच निगला नही जाएगा। वह ऐसे अनेक उद्धरण प्रस्तुत करेंगे, जो नेहरू जी ने सार्वजनिक भाषणों मे या हिन्दी के लेखकों के बीच मे हिन्दी के पक्ष मे कहें होंगे। किन्तु मनुष्य का सार्वजनिक चेहरा तो मुखौटा होता है। उसका असली चेहरा तो उसकी करनी से प्रकट होता है या अपने अंतरंगों के बीच ।

नेहरुजी की हिन्दी के प्रति अस्वीकृति का एक और उदाहरण दुर्गादास ने अपनी पुस्तक ''इंडिया फ्रोम कर्ज़न टु नेहरू ऐंड आफ्टर'' मे दिया है। जून 1961 मे मुख्यमंत्रियों कि पहली बैठक सम्पन्न हुयी थी। इस बैठक के विचारार्थ राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्र प्रसाद ने एक लिखित प्रस्ताव भेजा कि जिस तरह योरप की अलग अलग भाषाओं कि लिपि रोमन लिपि है, उसी तरह भारत की सभी भाषाओं को देवनागरी लिपि स्वीकार कर लेनी चाहिए। इससे देश की एकता संपुष्ट होगी। गुजरात के मुख्यमंत्री जीवराज मेहता को इसके अनुमोदन के लिए मुख्यमंत्रियों की बैठक मे बोलना था, किन्तु केरल के मुख्यमंत्री पुरुषोत्तम तनु पिल्लई ने कहा कि वह इसका अनुमोदन करेंगे। दक्षिण भारतीय मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्ताव के अनुमोदन से

प्रस्ताव को और शक्ति प्राप्त हुई। सब मुख्यमंत्रियों ने एक स्वर मे इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। बैठक मे केवल एक विवादी स्वर था। नेहरू सरकार के शिक्षा मंत्री श्री हुमायूं कबीर ने प्रस्ताव का विरोध करते हुये देवनगीरी के स्थान पर रोमन लिपि का सुझाव दिया। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने देवनगीरी लिपि पर मुख्यमंत्रियों के एकमत से पारित प्रस्ताव को ठंडे बस्ते मे डाल दिया। (पूर्वाक्त दुर्गादास, पृष्ठ 330)। इस तरह भाषाई सौमनस्य और एकता का एक सुनहरा अवसर खो गया। स्पष्ट है कि आज़ादी के 14 वर्षों बाद तक पूरे देश को हिन्दी राजभाषा के रूप मे स्वीकार थी, किन्तु जिस प्रधानमंत्री (नेहरू) को यह क्रियान्वित करना था, वही अवरोध डालने लगा, तो हिन्दी राजभाषा की गरिमा कैसे प्राप्त करती।

जब अहिन्दी भाषी प्रदेशों ने देखा कि जवाहर लाल नेहरू हिन्दी के विरूद्ध हैं, तो उनकी हिन्दी विरोधी भावनाओं को प्रोत्साहन और उभार मिला। और 1963 तक यह विरोध खुलकर सामनें आने लगा। जब जवाहर लाल नेहरू ने 'राजभाषा बिल – 1963 संसद में पारित किया तो तमिलनाडु की द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम पार्टी के अन्नादुराई ने इसका घोर विरोध किया। तब जवाहर लाल नेहरू ने सांसदो को आश्वासन दिया कि हिन्दी उन लोगों पर लादी नहीं जायेगी, जो उसे नही चाहते हैं। नेहरू जी नहीं चाहते थे कि हिन्दी राजभाषा के पद पर आरूढ़ हो। अतएव डी.एम.के. का विरोध, जो अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं उनसे प्रेरित था, हिन्दी को पूरे देश की राजभाषा बनने से रोकने का एक हथियार बन गया।

इंदिरा गांधी की भूमिका :

भारतीय संविधान में प्रावधान था कि संविधान लागू होने के पन्द्रह वर्ष के पश्चात हिन्दी पूर्णरूपेण अंग्रेजी के स्थान पर राजभाषा हो जायेगी। तदनुसार जनवरी, 1965 में राजभाषा हिन्दी में सभी सरकारी कामकाज किए जाने की घोषणा की गई। इस घोषणा के साथ ही तमिलनाडु में हिन्दी विरोधी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। लाल बहादुर शाष्त्री उस समय प्रधानमंत्री थे, और इंदिरा गांधी सूचना प्रसारण मंत्री। इंदिरा गांधी नें बिना प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की आज्ञा लिए तुरन्त ही मद्रास के लिए हवाई जहाज पकड़ा, और हिन्दी विरोधी तमिल आन्दोलनकारियों के साथ अपनी सहानुभूति व्यक्त की और उनको विश्वास दिलाया कि वह उनपर हिन्दी नही थोपी जानें देंगी। इंदिरा गांधी ने गर्व से घोषित किया *''मैने प्रधानमंत्री की अवहेलना की है, और मैं आगे भी करूंगी, अगर जरूरत पड़ेगी।''*

डा. राधाकृष्णन उस समय राष्ट्रपति थे। वे हिन्दी के समर्थक नही थे। अंग्रेजी लॉबी और उर्दू लॉबी भी हिन्दी के विरोध में अपनें तेवर पर धार दे रही थी। इंदिरा गांधी का उनसे मिल जाना मतलब रखता था। कुल मिलाकर परिस्थितियां ऐसी बनी की लाल बहादुर शाष्त्री को पीछे हटना पड़ा। राजभाषा एक्ट में संशोधन करके उसमें ''जवाहर लाल नेहरू का आश्वासन'' शामिल किया गया कि जब तक भारत का एक भी प्रदेश हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार नही करेगा, तब तक अंग्रेजी इस देश में बनी रहेगी। आज स्थिति यह है कि 125 करोड़ के इस देश में चाहे 124 करोड़ 95 लाख हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लें, किन्तु 5 लाख की जनसंख्या वाला मिजोरम प्रदेश उसे स्वीकार नही करे, तो अंग्रेजी राजभाषा के स्थान पर सुरक्षित रहेगी।

वैसे इंदिरा गांधी ने भारत में विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन करवाया। स्वयं उन्होने उसका उद्घाटन किया। मंच से उन्होने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया, हिन्दी के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया। हिन्दी प्रेमियों ने उनकी जय–जयकार की। बहुत कम लोग समझ पाये कि यह सब नाटक है। हिन्दी समर्थकों मूर्ख बना कर बहलाने का नाटक।

राजीव गांधी का अपराधः

हिन्दी की दुर्दशा और अवहेलना में राजीव गांधी ने अपना भरपूर योगदान दिया। जवाहर लाल नेहरू और इंदिरा गांधी ने जो कसर छोड़ दी थी, वह उनके ''लायक'' वंशज राजीव गांधी ने पूरी की।

राजीव गांधी ने देश में आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत की। उन्होने उद्योग के क्षेत्र में देशी उद्योगपतियों के बीच में विदेशी उद्योगपतियों की भागीदारी की व्यवस्था की। कुछ वैसी ही उदारीकरण की व्यवस्था राजीव गांधी ने भाषा के क्षेत्र में की। दूरदर्शन के हिन्दी कार्यक्रमों में हिन्दी बोलनें वालों की भाषा में अंग्रेजी के शब्द बहुलता से सुनाई पड़ने लगे। उन्होने हिन्दी और अंग्रेजी शब्दों का घोलमेल करके ऐसी खिचड़ी तैयार की जैसी विश्व के इतिहास में किसी स्वाधीन आत्मगौरवयुक्त देश ने अपनी भाषा के साथ

कभी भी नही की होगी। हिन्दी पर अंग्रेजी थोपकर राजीव गांधी ने राष्ट्रीय आत्मविश्वास को चोट पहुंचाई और अपनी गुलाम मानसिकता का दूरदर्शन पर प्रसारण किया।

और आज स्थिति यह है कि सबने हिन्दी की पराजय स्वीकार कर ली है। सबने यह मान लिया है कि केवल हिन्दी जानने वाला अंग्रेजीदाँ कि तुलना मे हीन होता है। अतएव सब बड़े पद, चाहे वह सरकार मे हो या निजी क्षेत्र मे, अंग्रेजी जानने वालों के लिए सुरक्षित हो गए हैं। जो अंग्रेजी न जाने वह अज्ञानी। वह मूर्ख। तभी फिल्मों मे शुद्ध हिन्दी बोलने वाला चरित्र उपहास का पात्र बनता है। देशी कपड़े पहनने वाला कभी नायक नहीं बन सकता। नायक तो केवल पश्चिमी पहनावा ''जींस और शर्ट'' पहनता है।

हाँ, अभी भी सरकारी विभागों मे हिन्दी प्रचार के लिए हिन्दी अधिकारी हैं, किन्तु वे सर्वथा उपेक्षित हैं। साल मे एक बार चौदह सितंबर के आसपास वह हरकत मे आते हैं। लकीर पीटते हुये वह एक कर्मकांड के रूप मे हिन्दी पखवाड़ा मनाते हैं, और फिर साल भर के लिए हिन्दी वैसे ही विलुप्त हो जाती है जैसे त्रिवेणी से सरस्वती।

''हिन्दी दिवस'' हिन्दी के राजभाषा के रूप मे अभिषक्त होने की प्रसन्नता मे ''विजय दिवस'' के रूप मे शायद कभी मनाया गया होगा। किन्तु कालांतर मे राजभाषा की लगातार उपेक्षा के कारण ''हिन्दी दिवस'' ने अब ''हिन्दी शोक दिवस'' का रूप ले लिया है। यह दिन अब हर साल सबको हिन्दी की राजभाषा के रूप मे दुर्दशा की याद दिलाने आता है। हिन्दी के साथ शासन और शासकों द्वारा किए गए छल की याद दिलाने आता है। सामान्य जन को मूर्ख बनाकर केवल तीन प्रतिशत अंग्रेजी जानने वालों की साजिश की याद दिलाने आता है। राष्ट्रभाषा के साथ राष्ट्रियता के क्षरण की याद दिलाने आता है। हिन्दी के लिए मातम मनाने की याद दिलाने आता है।

हिन्दी के विरुद्ध साजिश

आज़ादी के पूर्व हिन्दी का विरोध केवल अंग्रेजी से था। तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयाली, बंगाली और अन्य भारतीय भाषाओं से एकदम नहीं। किन्तु जवाहर लाल नेहरू और उनके उत्तराधिकारियों ने बड़ी चालाकी से हिन्दी के विरुद्ध अंग्रेजी के संघर्ष को ऐसा मोड दिया कि लगने लगा कि हिन्दी का वास्तविक संघर्ष अन्य भारतीय भाषाओं से है, अंग्रेजी के विरुद्ध नही। अंग्रेजी के समाचार पत्रों एवं अन्य माध्यमों से हिन्दी को खलनायिका सिद्ध कर दिया गया। और जो अंग्रेजी वास्तव मे भारतीय भाषा परिदृश्य मे खलनायिका है, रानी बन कर भारत मे शासन करने लगी। सन् 1961 तक तमिलनाडु, कर्नाटक, बंगाल, आंध्र प्रदेश आदि हिन्दी के समर्थक थे। वहीं हिन्दी के विरुद्ध विद्रोह के तूफान उठ खड़े हो गए। इन प्रदेशों मे सोची समझी एक चाल के रूप मे प्रचारित किया गया कि हिन्दी के उन्मादी लोग (**फैनेटिक**) उनके प्रदेश पर जबर्दस्ती हिन्दी थोपना चाहते हैं। इससे अहिंदी भाषी लोगों के नौकरी मे जाने के सारे रास्ते एकदम बंद हो जाएंगे। उनकी आर्थिक असुरक्षता की भावना को हथियार के रूप मे इस्तेमाल करते हुये उन्होने इन प्रदेशों के जनमानस मे हिन्दी के प्रति इतनी नफरत भर दी, कि उनको अंग्रेजी स्वीकार हो गई। यही तो अंग्रेजीदॉ ''**मैकालेपुत्र**'' चाहते थे।

जब तक ''**मैकालेपुत्र**'' भारत के शासनतंत्र मे हावी रहेंगे, अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त नहीं होगा, और हिन्दी कभी सही अर्थों मे राजभाषा नहीं बन पाएगी। इस परिदृश्य मे राजभाषा के रूप मे हिन्दी के विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान राम के अयोध्या के राजा बनाए जाने की घोषणा तो हो गयी थी, किन्तु इसके पहले वह अभिषक्त होते, उन्हे वनवास मिल गया। ठीक उसी तरह राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी राजभाषा के रूप मे सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व ही वनवास दे दिया गया है।

बी–255, सेक्टर–26,
नोएडा–201301
दूरभाष : 9891510230
dpsinha50@hotmail.com